न्याय का स्याह-सफेद

कोलम्बस की नई दुनिया, अमेरिका के मूल निवासी रेड इण्डियन्स को नया अनुभव लाई। लूट-पाट, बर्बर यातना और हत्या द्वारा उनका सुनियोजित ढंग से उन्मूलन किया गया। कालान्तर में अमेरिका एक मिश्रित संस्कृति (अफ्रीकी, स्पेनी, पुर्तगाली, चीनी, भारतीय आदि) के रूप में उभरा। किन्तु सत्ता और समाज की बागडोर एंग्लो सैक्सन श्वेत लोगों के ही हाथ में रही। अतः सार्वभौमिक मानवाधिकारों का पक्षधर अमेरिका आज भी नस्ली भेद-भाव से ग्रसित है। यहां की न्याय प्रणाली अश्वेतों (नीग्रो) को पूर्वाग्रह से ही लोफर, आवारा, कामचोर, अपराधी, जंगली आदि समझती है। अमेरिकी न्याय व्यवस्था के इसी नस्ली भेदभाव का ताजा शिकार ब्राइन बाल्डविन है। बाल्डविन जिसकी शुरुआती जिन्दगी चार्लोट्ट शहर के फुटपाथों से शुरू होकर एक सरकारी सुधार स्कूल में ठहरी थी, 18 वर्ष की उम्र में वह अपने एक साथी एडवर्ड हार्स्ले के साथ सुधार स्कूल से फरार हो गया, पर मुनरो काउण्टी में उसे एक श्वेत किशोरी की हत्या के आरोप में गिरफ्तार कर लिया गया। इस कांड के मुख्य आरोपी एडवर्ड हार्स्ले ने न केवल अपराध स्वीकार किया बल्कि यह भी बयान दिया कि बाल्डविन एकदम निर्दोष है। किन्तु अपने नस्ली भेदभाव के लिए कु प्रख्यात जज 'राबर्ट ली के' ने बाल्डविन को भी फांसी की सजा दे दी। मुकदमे के दस्तावेजों के अनुसार हार्स्ले के कपड़े खून से सने थे जबकि बाल्डविन के कपड़े साफ थे। विशेषज्ञ मानते थे कि हत्यारा खब्बू (बयंहत्या) था जो बाल्डविन पर लागू नहीं होता है। यही नहीं यह मुकदमा जिसकी शुरूआत में जूरी के ग्यारह सदस्य अश्वेत थे, जज एवं प्रतिपक्ष के वकील विंडैल ओवेंस की चालों से अन्ततः सभी श्वेत जूरियों द्वारा तय किया गया।

बाल्डविन की सजा का मुख्य आधार उसकी अपराध स्वीकृति को बनाया गया जो उसने खुद से नहीं दी थी वरन् यह उसकी बर्बर पिटाई तथा बिजली के अंकुश (cattle-prod) के झटकों के द्वारा उससे जबर्दस्ती मनवाई गई थी (साक्ष्य-एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी का बयान)। इस प्रहसन की हद तो तब हो गई जब बाल्डविन की पुनरीक्षण याचिका भी उसी रंग भेदी जज 'ली के' को ही दे दी गई। 'ली के' को अपने कृत्य का समर्थन करना ही था। बाल्डविन की फांसी के विरोध में पूर्व राष्ट्रपति जिमी कार्टर, मार्टिन लूथर किंग की विधवा कारेट्टा किंग तथा वेटिकन ने अलबामा के गवर्नर से अपील भी की किन्तु अमेरिका में रंगभेद सब पर भारी है। अन्ततः 22 वर्षों बाद उसे बिजली की कुर्सी पर मौत के मुंह में धकेल दिया गया। इस प्रकरण को अमेरिकी प्रेस का महत्व न देना भी काबिले तारीफ (?) है।

(इण्डिन एक्सप्रेस दिनांक 21 जून 1999 को छपी **The Observer News Service** की खबर के आधार पर) ■

सामाजिक डार्विनवाद का घातक परिणाम

आज से लगभग 20 वर्ष पहले एक युवक ने अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन के सीने में गोली उतार दी। उस समय संचार माध्यमों से छनकर आने वाली खबरों से स्पष्ट हुआ कि उक्त युवक ने अपनी प्रेमिका को यह वचन दिया था कि अगले दिन उसे पूरा अमेरिका जानने लगेगा। इसका सबसे आसान रास्ता दुनिया के सबसे शक्तिशाली पदाधिकारी को गोली मार देना लगा था।

उस घटना को लोग आज भूलने लगे हैं किन्तु हाल ही में अमेरिकी महाद्वीप में स्कूली छात्रों द्वारा अपने ही स्कूलों में खुद अपने सहपाठियों के सामूहिक हत्या के प्रयासों ने एक बार पूरी दुनिया को झकझोर दिया है। आखिर क्यों ऐसा हो रहा है कि प्रकृति के सर्वश्रेष्ठ बच्चे उद्देश्यहीन और अकारण हिंसा पर आमादा हो रहे हैं?

इस समस्या की जड़ें गहराई में अमेरिकी जीवन दर्शन में निहित हैं। दरअसल अमेरिकी श्रीमंतों ने अपनी समृद्धि की रक्षा के लिए समूचे अमेरिका में जीवन-दर्शन के रूप में सामाजिक डार्विनवाद को प्रतिष्ठित कर रखा है। इस जीवन के अनुसार सब कुछ विजेता का होता है। दरअसल अपने निष्कर्षों तक पहुंचने के दौरान डार्विन भी मुक्त व्यापार के दर्शन से प्रभावित थे।

समाज पर पसरे इस दर्शन का प्रभाव आत्मघाती होना ही था। वस्तुतः यह दर्शन और सिद्धान्त पशुओं के लिए प्रगतिशील सिद्धान्त हो सकता है। इसका मानव समाजों पर सामान्यीकृत प्रयोग मानव समाज में अधोगामी प्रवृत्तियों को जन्म देता है। यही वजह है कि अमेरिकी समाज में व्यक्तित्व के संकट से ग्रस्त व्यक्ति अतिकुंठा का शिकार होकर अपने अस्तित्व को इन मानव पशुओं की भीड़ में डूबने से बचाने के लिए अथवा इस अभियान में असफल व्यक्ति तमाम ऐसी मानव विरोधी गतिविधियों में लिप्त हो जाता है। इस बार अमेरिकी स्कूल हिंसा में लिप्त छात्र जबर्दस्त स्कूल होड़ में उपेक्षित छात्र थे। अब **"Winner takes the all"** समाज में ये छात्र मात्र अपने होने का अहसास कराने के फेर में न केवल अपने अनेक सहपाठियों को वरन् खुद को भी काल के गाल में ढकेल गए हैं।

जब तक कोई समाज इस आत्मकेन्द्रित सामाजिक डार्विनवाद के पशु उपयोगी दर्शन से पल्ला झाड़ कर समता तथा सुख-सुविधा के मानवोचित समान बंटवारे की तरफ बढ़ाने वाले दर्शन को आत्मसात नहीं करता उसे ऐसे संकटों से दो-चार होते रहना ही पड़ेगा।

■ मुक्तिबोध मंच, पन्तनगर